विषय-सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ क्रमांक
1.	कृत्रिम गर्भाधान का पशु विकास कार्य में महत्व	01
2.	बधियाकरण एवं उसका महत्व	04
3.	चारा विकास कार्यक्रम	07
4.	पशुओं में होने वाली सामान्य बीमारियां एवं उनके प्राथमिक उपचार	11
5.	स्वास्थ्य एवं रोगी पशु के लक्षण तथा रोगी पशुओं का प्रबन्ध	16
6.	पशुओं के संक्रामक रोग तथा उनका टीकाकरण	19
7.	संक्रामक बीमारी से बचाव के उपाय	22
8.	पशुओं की प्राथमिक चिकित्सा	23
9.	दुग्ध उत्पादन के लिये जरूरी बातें	31
10.	दूध दुहने का सही तरीका एवं ध्यान देने योग्य बातें	32

संकलनकर्ताः–

डॉ. वाय. एन. शुक्ला, डॉ. के. के. श्रीवास्तव, डॉ. मेरी. बी. जॉन,
डॉ. आर. सी. रामटेके, डॉ. उपासना साहू, डॉ. अंजू शर्मा,
डॉ नीतू गौरड़िया, डॉ. गौतम राय, डॉ. सुनीता राय,
डॉ. निशा जैन एवं डॉ. महावीर सरसींहा

सहायक पशु चिकित्सा क्षेत्र अधिकारी प्रशिक्षण केन्द्र महासमुन्द–493445
संचालनालय, पशु चिकित्सा सेवायें प्रांगण, जी. ई. रोड रायपुर–492001
दूरभाष : 0771–2424961, फैक्स 0771–2424961

(राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के सौजन्य से)

1. कृत्रिम गर्भाधान का पशु विकास कार्य में महत्व

नस्ल सुधार का महत्व –

पशु हमारे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का तथा कृषि का मुख्य आधार है। पशु से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना, उनकी नस्ल, जाति तथा उसकी मूल क्षमता पर निर्भर करता है। इसलिए पशु विकास हेतु नस्ल सुधार कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है, जिससे पशु प्रजनन किस प्रकार संभव है –

उन्नत नस्ल के चुने हुए उच्च कोटि के सांड़ से प्राप्त बछड़े–बछियों में अधिक उत्पादन क्षमता होती है। इसलिए निरंतर पशु विकास हेतु हर समय उन्नत नस्ल के उच्च कोटि के सांड़ से पशुओं को प्रजनन कराना चाहिए। इसलिए उच्च कोटि के चुने हुए कीमती सांड़ों का क्रय, उनकी देखभाल, पालन–पोषण की जिम्मेदारी शासन एवं विभिन्न अन्य समस्याओं ने ली है और इन उच्च कोटि के सांड़ो द्वरा अनेक पशुओं में प्रजनन हेतु कृत्रिम गर्भाधान की पद्धति को क्यों अपनाया जाता है?

कृत्रिम गर्भाधान द्वारा अनेक पशुओं में गर्भाधान द्वारा अनेक पशुओं मं गर्भाधान कराने हेतु कम सांड़ों की आवश्यकता होती है, क्योंकि एक सांड़ द्वारा कृत्रिम गर्भाधान विधि से 10,000 तक मादाओं में प्रजनन हेतु कराना संभव होता है इसलिए उच्च कोटि कें सांडों का चयन, करना, चुने हुए उच्च कोटि के सांड़ों का उपयोग हजारों मादाओं में प्रजनन हेतु कराना तथा हजारों की संख्या में उन्नत बछड़े–बछिया उत्पन्न कराना कृत्रिम गर्भाधान से ही संभव है। इसलिए कृत्रिम गर्भाधान को पशु विकास का मुख्य आधार तथा पशु विकास की कुंजी कहा जाता है। सारी दुनिया ने इस पद्धति से ही पशु पालन के क्षेत्र में विकास किया है।

क्या प्राकृतिक विधि से सांड़ों के उपयोग से बड़े पैमाने पर पशु विकास संभव है ? प्राकृतिक पद्धति से एक सांड द्वारा एक वर्ष में 60 से 100 पशुओं में ही प्रजनन संभव होता है। इसलिए प्राकृतिक विधि से प्रजनन कराने के लिए अनेक सांड़ों की आवश्यकता हेाती है। ये सभी सांड़ उच्च कोटि के नहीं हो सकते, इसलिए इनसे उत्पन्न संतानें उच्च कोटि की नहीं होगी, परन्तु उच्च कोटि का सांड़ चयन कर कृत्रिम गर्भाधान द्वारा उच्च कोटि कीं संतानें हजारों की संख्या में उत्पन्न की जा सकती है।

कृत्रिम गर्भाधान से अन्य प्रमुख लाभ –

1. कृत्रिम गर्भाधान के कारण सांड़ों का चयन करना संभव होता है, क्योंकि अनेक पशुओं में प्रजनन हेतु कम सांड़ों की आवश्यकता होती है।
2. उच्च कोटि के सांड़ों का उपयोग अनेक पशुओं में करके ही हजारों की संख्या में उन्नत बछड़े–बछियों को पैदा कराना कृत्रिम गर्भाधान से ही संभव है।
3. कृत्रिम गर्भाधान करते समय मादा की प्रजन संबंधी जांच हो जाती है।
4. कृत्रिम गर्भाधान के समय हजारों पशुओं की जांच होने से उनका प्रजनन, स्वास्थ्य के आधार पर चुनाव, छटनी, इलाज कराना संभव होता है। जिससे पशुओं में प्रजनन की क्षमता में विकास होता है। प्राकृतिक विधि से प्रजनन कराने पर प्रत्येक पशु के जांच न होने के कारण, प्रजनन की क्षमता में विकास संभव नहीं होता है।
5. इस प्रकार से कृत्रिम गर्भाधान के कारण सेक्सुअल हेल्थ कंट्रोल संभव होता है। प्रजनन से संबंधित बीमारियों की रोकथाम संभव होती है, क्योंकि नर पशु का मादा पशु से सीधा संपर्क नहीं होता है।
6. हिमीकृत वीर्य के कारण अब हम दुनिया के किसी भी कोने से उच्च कोटि के सांड़ का वीर्य प्राप्त कर सकते हैं और उससे कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से हमारे प्रदेश के पशुओं में प्रजनन करवा सकते हैं।
7. संकर नस्ल के हमारे पशुओं से प्रजनन करा कर अधिक दूध देने वाली संकर गायों को उत्पन्न कराना कृत्रिम गर्भाधान से संभव हुआ है।
8. कृत्रिम गर्भाधान के कारण के प्रजनन के संबंध में सही लेखा–जोखा रखना संभव होता है। इससे कौन से सांड़ की संतान अधिक लाभदायक, प्रगतिशील है, यह विदित होता है। इसे प्रोजनी टेस्टिंग कहते हैं। यह पशु विकास का प्रमुख आधार है. यह कृत्रिम गर्भाधान के बगैर संभव नहीं है।

मादा पशुओं के गर्मी में आने के लक्षणः–

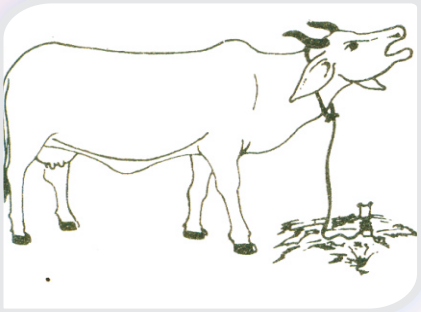

रंभाना एवं बेचैनी

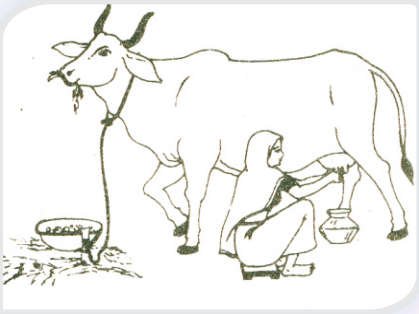

दूध उत्पादन में गिरावट

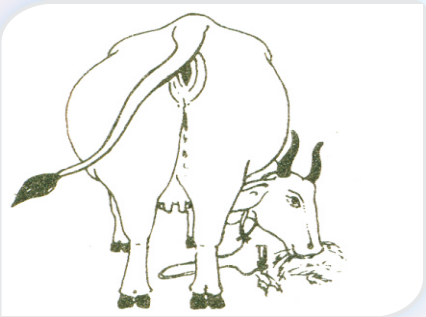

योनि द्वार में लालपन, सूजन, एवं तरल स्त्राव

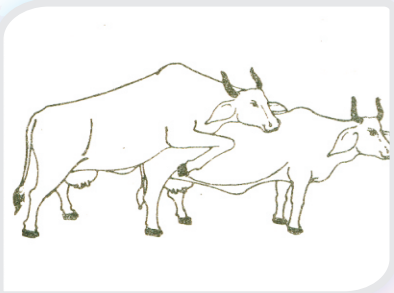

दूसरी गाय पर चढ़ना

2. बधियाकरण एवं उसका महत्व

बधियाकरण –

नरपशु का तकनीकी विधि द्वारा नसबंदी कराना ही बधियाकरण कहलाता है। बाछा एवं पाड़ा में बधियाकरण करने की सबसे अच्छी आयु 6–12 माह की उम्र होती है क्योंकि इस उम्र में पशु को नियंत्रित करना आसान होता है एवं इस आसान होता है एवं इस अवस्था में नस भी मुलायम होती है जिससे बधियाकरण करने में आसानी होती है। ज्यादा उम्र के पशु में नस कठोर हो जाती है जिससे बधियाकरण करने में परेशानी होती है तथा कभी–कभी बधियाकरण असफल होने की संभावना रहती है।

बधियाकरण उपकरण

महत्व –

1. बधियाकरण करने से उत्तम किस्म का बैल एवं भैंस तैयार करना, जो हल–गाड़ी हांकने एवं कृषि कार्यों में काम आता है।
2. जानवर सीधा–सादा हो जाता है।
3. देशी नस्ल के द्वारा संतानोत्पत्ति को रोका जा सकता है।

पैरा उपचार–गुणावत्ता में वृद्धि :–

छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा कहा जाता है। पशु पालन के क्षेत्र में अन्य प्रदेश की तुलना में काफी पीछे है। पशु पालन में पिछड़ने का प्रमुख कारण पशुओं के लिए आवश्यक हरे चारे एवं पौष्टिक आहार की कमी है। फलस्वरूप किसान भाईयों का गाय, भैंस, बैल जोड़ी एवं भैंस जोड़ी अन्य राज्यों से खरीदना पड़ता है। छत्तीसगढ़ में पैरा पर्याप्त मात्रा में, उपलब्ध है परंतु यह पौष्टिक एवं सुपाच्य न होने के कारण पशुओं के शारीरिक विकास हेतु पर्याप्त नहीं होता ।

यदि पौष्टिक चारे की उपलब्धता कम लागत में पर्याप्त मात्रा में हो तो इस राज्य का किसान/पशु पालक स्वयं बछिया/बछड़े, पड़वे/पड़िया पालनकर अपनी आमदानी बढ़ा सकता है। इस योजना से प्रति हितग्राही का शत–प्रतिशत अनुदान पर रू. 500/ की सामग्री केन प्लास्टिक शीट, यूरिया, चूना प्रदाय किया जाता है।

1. यूरिया शिरा उपचार :–

सर्वप्रथम एक मजबूत बड़ा घड़ा (15 किलो क्षमता) लीजिये इसमें 2 लीटर साफपानी डालें अब उसमें 1.5 किलो यूरिया डालकर अच्छे से घोल लें अब इसमें 10 किलो शिरा (सात किलो गुड़ को 3 लीटर पानी में घोलकर)तैयार कर सकते हैं। एक किलो नमक एवं एक किलो खनिज मिश्रण (मिल्कमीन एग्रीमीन) डालकर उसे पुनः अच्छी तरह घोल लें। अब इस मिश्रण युक्त घोड़े को सुरक्षित स्थान पर रख लें।

खिलाने की विधि :–

आधा किलो बने मिश्रण को लेकर 2 लीटर साफ पानी में मिलाकर पतला घोल बना लें। इस घोल की 5 किलो पैर कुट्टी में डालकर अच्छी तरह से हाथों से मिला दें। इस तरह उपचारित पैर कुट्टी पर पशु को एक दिन खिलाने हेतु पर्याप्त है। ज्यादा दूध देने वाली पशुओं को अलग से चुनी, खली एवं चोकर मिलाकर दे सकते हैं।

2. यूरिया उपचार :

1 क्विंटल पैरा कुट्टी 2 मीटर का घेरा फैला लें। 4 किलो यूरिया को 50 लीटर पानी में पूर्ण रूप से घोलकर धीरे–धीरे 100 किलो ग्राम (1क्विंटल) पैरा कुट्टी में अच्छे से छिड़काव करें। अच्छी तरह फैले हुए कुट्टी में समान रूप से मिलावें। उपचारित कुट्टी को पॉलिथीन (यूरिया के बोरे को जोड़कर बना सकते हैं) ढंक दें। जिससे बाहर की हवा अंदर न जावें। 21 दिनों बाद उपचारित कुट्टी पशुओं को खिलाने हेतु तैयार हो जाती हे। उपचारित कुट्टी को खिलाने के 1/2 से 1घंटे पहले खुली हवा में रखा जाता है।

पैरा यूरिया उपचार की विधि

यूरिया उपचारित पैरा

सावधानियां :–

1. मवेशियों को यूरिया घोल से दूर रखना चाहिए।
2. यूरिया का घोल बनाने के लिए पानी साफ व सही मात्रा में डालना चाहिए।
3. चार माह से कम उम्र के पशुओ को उपचारित चारे न खिलावें।
4. पैरा कुट्टी का उपचार पक्के फर्श या ऐसे जगह करना चाहिए जिससे यूरिया घोल निकल कर बर्बाद न हो या जमीन न सोंखे।

3. पशु मूत्र उपचार :–

पैरा कुट्टी की कुल मात्रा से आधी मात्रा में पशु मूत्र लेकर कुट्टी में अच्छी तरह से मिला दें। उक्त कुट्टी को धूप में सूखते तक रखे। सुखने के पश्चात् पशु मूत्र उपचारित कुट्टी पशुओं को आवश्यक खिला दें। इस विधि में बिना लागत के पशु मूत्र मेंउपस्थित नाईट्रोजन, कैल्शियम एवं फॉस्फोरस जैसी उपयोगी तत्व पैर कुट्टी में मिल जाते है।

4. चूना उपचार :–

समतल गोबर लिपि जमीन पर लगभग 6 इंच मोटी 1 क्विंटल पैरा कुट्टी धूप में फैला देते है। 2 किलो चूना 40 लीटर पानी में घोल कर फैले हुए कुट्टी में बराबर मात्रा में छिड़काव करें। इस उपचारित कुट्टी को सुखने के बाद थप्पी जमाकर घर में रख लें एवं आवश्यकतानुसार पशुओं को खिला दें।

चूना उपचारित कुट्टी पशुओं को खिलाने से पैरा में विद्यमान हानिकारक पदार्थ ऑक्जेलिक अम्ल का असर कम हो जाता है। शारीरिक विकास एवं एवं दूध उत्पादन हेतु आवश्यक कैल्शियम चूने के माध्यम से पूर्ति हो जाती है।

3. चारा विकास कार्यक्रम

दाना मिश्रण के अलावा संतुलित आहार हेतु चारे की पौष्टिकता का अलग महत्व है, अतः हमें चारे की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। जहां हम हरे चारे से पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन ठीक रख सकते हैं वहीं दाना–चूनी व अन्य कीमत खाद्यान्न की मात्रा को कम करके पशु आहार की लागत में भी बचत कर सकते हैं। बहुवर्षीय घासें कम कृषि योग्य भूमि का उपयोग करके कम लागत में पूरे वर्ष हरा चारा प्रदान कर सकती है।इस घासों से जाड़ों के मौसम में पर्वतीय क्षेत्रों तथा मैदानी भागों में गर्मी के मौसम में भी बराबर हरा चारा घास प्राप्त होता रहता है। इस फसलों की एक बार बुवाई करके बार–बार बुवाई के खर्चे से भी बचा जा सकता है और पौष्टिकता अन्य चारों की अपेक्षा अधिक होती है, फलतः पशु के दुग्ध उत्पादन व स्वास्थ्य पर भी लाभकारी प्रभाव पड़ता है।

फसल	प्रजातियां	बुवाई का समय	बीज मात्रा कि.ग्रा./है	खाद की मात्रा कि.ग्रा./है	उपज
संकर नैपियर बाजरा	को–1,2,3 आईजीएफआरआइ 7,10 पीबीएम–83,233, 239 एनबी–21	मार्च से अक्टूबर	40,000 जोड़े 40,000 जोड़े	नत्रजन–20 फोसफो–15 लगाते समय एवं प्रत्येक कटान के बाद, नत्रजन–30	150–180 (शुद्व) 180–280 (दूसरी फसलों के साथ)
ज्वार एक कटान वाली	पीसी–6,9,23 एचसी–136,151 पंतचरी 3/4, को 27, सीएसवी–15	मार्च से जुलाई	25–30	नत्रजन–60 फोसफो–30	30–50
ज्वार कई बार कटाने वाली	एसएसजी–593 प्रोएग्रो–855 प्रोएग्रो एक्स–988 एसएसजी–898	मार्च से जुलाई	25–30	नत्रजन–60 फोसफो–30 एवं नत्रजन–30	50–80
बाजरा	एल–74 राजस्थान 171	अप्रेल से जुलाई	8–10	नत्रजन–40 फोसफो–20	25–50
बरसीम	बीएल–1,10,22 जेबी–1,2,3 यूपीबी 110, मस्काबी	अक्टूबर से नवम्बर	20–25	नत्रजन–30 फोसफो–80	70–110
रिजका	वार्षिक आनुंद – 2,3 को 1, एलएच–84, एल.एल.सी.–3,5 बहुवर्षी टी–9	अक्टूबर से नवम्बर	20–25	नत्रजन–30 फोसफो–80	60–80 (वार्षिक) 80–110
जई	यूपीओ–94,212 ओएस–6,7 ओएल–9	अक्टूबर से नवम्बर	80–90	नत्रजन–80 फोसफो–40	30–45

पशुओं में हरे चारे का होना अत्यंत आवश्यक है। यदि किसान चाहते हैं कि उनके पशु स्वस्थ्य रहें व उनसे दूध एवं मांस का अधिक उत्पादन मिले तो उनके आहार में वर्ष भर हरे चारे को शामिल करते रहें। मुलायम व स्वादिष्ट होने के साथ–साथ सुपाच्य भी होते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें विभिन्न पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में होते हैं। जिनसे पशुओं की दूध देने की क्षमता बढ़ जाती है और खेती में काम न करने वाले पशुओं की कार्यशक्ति भी बढ़ती है। दाने की अपेक्षा हरे चारे से पौष्टिक तत्व कम खर्च पर मिल सकते हैं। हरे चारे के अभाव में पशुओं का विटामिन ए का मुख्य तत्व केरोटीन काफी मात्रा में मिल जाता है। हरे चारे के अभाव में पशुओं का विटामिन ए प्राप्त नहीं हो सकेगा और इससे दूध उत्पादन में भारी कम आ जायेगी, साथ ही पशु विभिन्न रोगों से भी ग्रस्त हो जायेगा। गाय व भैंस से प्राप्त बच्चे या तो मृत होंगे या वे अंधे हो जायेंगे और अधिक समय तक जीवित भी नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार आप देखते हैं कि पशु आहार में हर चारे का होना कितना आवश्यक है।

साधारणतः किसान भाई अपने पशुओं को वर्ष के कुछ ही महीनों में हरा चारा खिला पाते हैं इसका मुख्य कारण यह है कि साल भर हरा चारा पैदा नहीं कर पाते। आमतौर पर उगाये जाने वाले मौसमी चारे मक्का, एम.पी.चरी, ज्वार, बाजरा, लोबिया, ग्वार, बरसीम, जई आदि से सभी किसान भाई परिचित हैं। इस प्रकार के अधिक उपज वाले पौष्टिक उन्नतशील चारों के बीज छत्तीसगढ़ पशुपालन विभाग व राष्ट्रीय बीज निगम द्वारा किसानों को उपलब्ध कराये जाते हैं। जिससे वह अपने कृषि फसल चक्र के अंदर अधिक से अधिक उठा सकते हैं जिससे अधिक से अधिक पशुओं के पोषण की पूर्ति हो सके और दूध एवं मांस उत्पादन में सहायता मिले।

पशुओं के आहार देने के नियम :–

(1) प्रतिदिन 6 किलो सूखा चारा एवं 15–20 किलो हरा चारा खिलाना चाहिये।

(2) जब पशुओं को मुख्यतः सूखा चारा ही उपलब्ध हो तो यूरिया मोलेसिस मिनरल ब्लॉक का उपयोग करना चाहिए।

(3) पशुओं को स्वस्थ रखने व उनके उत्पादन में वृद्विके लिये संतुलित पशु आहार / बाईपास प्रोटीन आहार खिलाना चाहिए।

(4) पशुओं को अच्छी गुणवत्ता का खनिज मिश्रण देना चाहिए।

(5) पशुओं का आहार अचानक न बदलकर धीरे–धीरे बदलना चाहिए।

(6) चारा काटकर खिलाना चाहिए। कुट्टी मशीन का प्रयोग करें। चारा काटकर खिलाने से चारा का नुकसान नहीं होता तथा पशु आराम से खाते व पचाते है।

हरे चारे का महत्व :–

(1) पशुओं को स्वस्थ रखने तथा उनका दूध उत्पादन बढ़ाने के लिये हरा चारा अति आवश्यक है।

(2) हरे चारे में विटामिन ''ए'' और खनिज अधिक मात्रा में होते है।

(3) पशु इसे चाव से खाते है और आसानी से पचाते है।

(4) पशु की प्रजनन शक्ति के महत्वपूर्ण है। इससे पशु समय में गर्मी में आता है और दो ब्यातों का अंतर भी कम हो जाता है।

संतुलित आहार का दुग्ध उत्पादन में महत्व :–

संतुलित पशु आहार से जानवर स्वस्थ रहते है व उनका अच्छा विकास होता है। यह गर्भ में पल रहे बच्चे के समुचित विकास के लिए भी बहुत उपयोगी है।

(1) यह प्रजनन शक्ति बढ़ाता है और दूध उत्पादन एवं फैट में भी वृद्विकरता है।

(2) दुधारू पशुओं के लिए स्वास्थ्य के लिये 2 किलो पशु आहार प्रतिदिन व प्रति लीटरउत्पादित दूध के लिये गाय को 400 ग्राम व भैंस को 500 ग्राम अलग से देना चाहिए। ब्याने वाली गाय व भैंसो को गर्भावस्था के अंतिम 2 महीने में 1 किलो पशु आहार अतिरिक्त अलग से देना चाहिये। बछड़े / बछियों को 1 से 1.5 किलो संतुलित आहार देना चाहिये।

खनिज मिश्रण का महत्व :–

(1) बछड़े / बछियों की वृद्विमें सहायक है।

(2) पशु द्वारा खाये गये आहार को सुपाच्य बनाता है।

(3) दुधारू पशु के दूध उत्पादन में वृद्वि करता है।

(4) पशु प्रजनन शक्ति को ठीक करता है।

(5) पशुओं की रोगो से लड़ने की क्षमता को बढ़ाता है।

(6) पशुओं को ब्याने के आस–पास होने वाले रोगों जैसे दुग्धज्वर, कीटोसिस, मूत्र में रक्त आना आदि का रोकथाम करता है।

ब्लाक खिलाने के लाभ :–

(1) पशु सूखा चारा अधिक खाता है और खराबी भी कम करता है।

(2) पशु की पाचन शक्ति अच्छी रहती है।

(3) दूध उत्पादन और उसका फैट प्रतिशत बढ़ता है।

(4) सूखे चारे के साथ ब्लाक चटाने से पशु को निवाई भर की आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

पशुओं के लिए पानी का महत्व :–

(1) पशु आहार और चारे को पचाने के लिये।

(2) पोषक तत्वों को शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुंचाने के लिये।

(3) मूत्र द्वारा अवांछित एवं जहरीले तत्वों की निकासी के लिये।

(4) शरीर में तापमान को नियंत्रित करने के लिये।

लूसर्न

मक्का

गिनी घास

सूडान

ज्वार

नेपियर घास

4. पशुओं में होने वाली सामान्य बीमारियां एवं उनके प्राथमिक उपचार

पशुओं के बांझपन रोग तथा उनका बचाव व उपचार

दुधारू पशुओं में प्रजनन संबंधी कई प्रकार की समस्यायें होती है। इन समस्याओं में (1) पशुओं बांझपन का होना (2) उनका ऋतु चक्र में न आना (मदहीनता) (3) उनकी ऋतुकाल का कमजोर होना (मदमंदता) (4) उनका सामान्य से छोटा अथवा बड़ा ऋतुकाल का होना (5) उनमें डिम्बक्षरण का अभाव व बच्चा पैदा होने में परेशानी का होना आदि प्रमुख है।

समस्यायें तथा समाधान

पशुओं में बांझपन की प्रमुख समस्याओं व उनके समाधान का उल्लेख एवं सुझाव निम्नलिखित है :–

(1) जीवाणुओं का प्रकोप :–

गाय–भैंसो में बांझपन के कारणों में उनका बार–बार ऋतुचक्र में आना, गर्भाशय अथवा डिम्बवाहिनी में मवाद पड़ना, भ्रूण की वृद्विकी प्रारंभिक अवस्था में विनाश होना, बच्चे का गर्भपात होना आदि समस्यायें प्रमुख होती है। यह समस्यायें प्रायः जीवाणुओं, विषाणुओं तथा परजीवियों (पैरासाइट) के संक्रमण से होती है। संक्रामक रोग जैसे क्षयरोग, ब्रूसोलोसिस, खुरपका–मुँहपका आदि इस समस्या को और गंभीर बना देते हैं।

बचाव हेतु सुझाव :–

(अ) संक्रमित (रोगी) पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।

(ब) समय–समय पर पशुओं के संक्रमण की जॉच करनी चाहिए।

(स) संक्रमित गर्भपात से मरे बच्चे (भ्रूण) को जला देना चाहिए अथवा गहरे गड्ढे में गाड़ देना चाहिए।

(द) ऐसे पशु की देख–रेख पशु चिकित्सक से करवानी चाहिए।

(2) मदहीनता (गर्मी में न आना) का होना :–

पशुओं का लगातार अधिक समय तक ऋतुकाल में न आना मदहीनता कहा जाता है। मदहीनता का प्रमुख कारण कुपोषण, विपरीत पर्यावरण, संक्रामक रोगो का होना, मन्दमदता, गर्मी की पहचान में त्रुटि होती है। ऐसी परिस्थिति में पशुओं के गर्भाधान होने के दो माह बाद पशु के गर्भधारण की पुष्टि पशु चिकित्सक से अवश्य करा लेनी चाहिए। यदि पशु गर्भित न निकले तो उसके उपचार का कार्य अनुभवी पशु चिकित्सक के परामर्श के अनुसार करना चाहिए।

(3) असंतुलित पशु पोषण का होना :–

पशुओं की प्रजनन क्षमता में खनिज लवणों एवं विटामिन्स का विशेष योगदान होता है। इन पोषक तत्वों की कमी से पशुओं में मदहीनता अथवा बार–बार गर्मी में आने एवं गर्भधारण न कर पाने की समस्यायें भी देखने में आती है। अतः पशु की खुराक में विटामिनयुक्त हरे चारे एवं खनिज लवणों की पर्याप्त मात्रा देने से इस समस्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

(4) बांझपन में हार्मोन का प्रभाव :–

हार्मोन शरीर से वृद्वि से लेकर प्रजनन क्रियाओं के नियंत्रण तक की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। हार्मोन शरीर के अन्दर विभिन्न ग्रंथियों में बनते है जहां से वे सीधे खून में चले जाते है। हार्मोन की मात्रा में कमी–बेशी से ऋतुकाल में मदहीनता अथवा मंदमदता होना, अत्यधिक छोटा या बड़ा मदकाल (ऋतुकाल) का होना, अण्डाशय में ''कारपस ल्यूटियम'' का अधिक समय तक बना रहना या नष्ट हो जाना, शुक्राणुओं तथा अण्डों के निकलने तथा निषेचन (मिलने) में बाधा होना, अण्डाशय तथा अण्डकोश का अधिक छोटा अथवा बड़ा होना और उसकी क्रियाशीलता में कमी आना होता है। इनका समाधान उपचार से ही संभव है।

(5) बार–बार ऋतुचक्र में आना (पुनरागत प्रजनक) :–

गाय–भैंसो में ऋतुकाल (मदकाल) का समय औसतन 18 घण्टे तक रहता है। ऋतुकाल समाप्त होने के लगभग 12 से 14 घंटे बाद अण्डाशय से डिम्बक्षरण होता है, जो कि शुक्राणु से मिलकर भ्रुण बनाता है। कई बार अण्डाशय से डिम्बक्षरण

नियमित समय पर नहीं होता है जिसके कारण पशु गर्भित नही हो पाते है तथा अगले 20–21 दिनों बाद पुनः मद में आते है। पशुओं की इस स्थिति को 'पुनरागत प्रजनक' (रिपीट ब्रीडर) कहा जाता है। यह स्थिति पशु की बच्चेदानी में संक्रमण रोग होने के कारण, वीर्य की खराबी तथा उचित समय पर पशु का गर्भाधान न करने से भी हो जाती है। अतः पशुपालको को चाहिए कि पुनरागत प्रजनक संबंधी पशुओं की पशु चिकित्सक से उपचार करवाना चाहिए।

(6) गर्भाधान का उचित समय :–

उक्त समस्या के निदान हेतु उचित समय पर पशुओं का गर्भाधान करना आवश्यक होता है। साधारणतया गाय तथा भैंस में मद समाप्त होने के 8 घंटे पूर्व से लेकर मद समाप्त होने तक डिम्बक्षरण होता है। अतः यदि पशु प्रातःकाल में ऋतु (मद) में आया है तो उसका वीर्यदान सायं के समय और यदि पशु में ऋतु के लक्षण सायंकाल में दिखाई देते है तो पशु का वीर्यदान अगले दिन प्रातःकाल में करवाना चाहिए। गर्भाधान के 2 माह बाद गर्भ परीक्षण में यदि मादा गाभिन न पायी जाए तो पशु चिकित्सक से जांच करानी चाहिए।

(7) जेर का अंदर रूक जाना (रिटेन्स ऑफ प्लासेन्टा) :–

अधिकांश पशुओं में बच्चा देने के बाद प्राकृतिक ढंग से जेर गिर जाती है। परन्तु कुछ पशुओं में बच्चा देने के बाद जातक पशु के पेट के अन्दर जेर फंस जाती है, जिसके कारण पशु के जनन अंगों का संक्रमण हो जाता है, और उसमें मवाद पड़ जाने के कारण उनकी प्रजनन क्षमता स्वास्थ्य दोनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जेर को गैर अनुभवी व्यक्ति से निकलवाना उचित नही होता है। ऐसा करने से पशु के गर्भाशय के अन्दर घाव बन सकता है और उसमें खून बह सकता है। जेर गिरान के उपचारों में पशु को तेज चलना, उसे गुड़ का पानी पिलाना, जेर से लटके हुए हिस्से पर हल्का वजन बांधना, कमजोर पशु के शरीर पर ग्लूकोज अथवा लवण का घोल चढ़वाना आदि साधारण उपचार भी लाभकारी होते है।

(8) बच्चा पैदा होने में कठिनाई (डिस्टोकिया) :–

बच्चा पैदा होने में कठिनाई के प्रमुख कारण पशु प्रसव के समय पैदा होने

वाले बच्चे के आकार का बड़ा होना, मादा पशु के शरीर का आकार छोटा होना, जातक पशु द्वारा एक से अधिक बच्चे का जन्म देना, सर्विक्स का पूर्ण रूप में खुला होना, पेल्विस का छोटा होना तथा गर्भाशय का मुड़ जाना होता है।

उपरोक्त समस्याओं के कारण बछड़ों में मृत्यू दर अधिक हो जाती है और कभी–कभी मादा पशु की भी मृत्यू हो जाती है।

(9) गर्भाशय का बाहर निकल आना (प्रालेप्स आफ यूटेरस) :–

इस समस्या का मुख्य कारण मादा पशु के गर्भाशय का बड़ा होना तथा उसके प्रजनन अंगों में चर्बी का जमा होना होता हैं। अतः बच्चा देने के पूर्व गर्भाशय बाहर निकलने की स्थिति में कुशल एवं योग्य पशु चिकित्सक द्वारा ही उपचार कराया जाना चाहिए।

(10) संक्रामक गर्भपात (ब्रूसेला रोग) :–

यह रोग ''ब्रूसेला एर्वाटस'' नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु गाय तथा भैंसो के गर्भपात का कारण बनता है। इस रोग के लक्षणों में गर्भाशय का शिथिल पड़ जाना, गर्भाशय में ऐंठन आ जाना, हारमोन्स की कमी से गर्भाशय की सक्रियता का कम होना, पशु का 5 से 6 माह का गर्भ गिर जाना, पशु की जेर कई दिनों तक न गिरना, एवं जेर में पीले रंग की धारियां दिखाई देना आदि प्रमुख लक्षण होते है। इस रोग का उपचार पशु चिकित्सक से करवाना चाहिए।

(11) गर्भाशय शोथ (मेस्ट्रिटिस) :–

यह रोग अधिकतर नये ब्याये पशुओं में देखने को मिलता है। इस रोग से गर्भाशय में सूजन आ जाती है और उससे मवाद जैसा गाढ़ा पानी निकलता है। इस बीमारी का मुख्य कारण गर्भाशय में रूकी हुई जेर होती है जिसका कुछ हिस्सा अंदर रह जाता है। योनि में हाथ डालकर बच्चा निकालने से भी कभी–कभी जीवाणुओं से संक्रमण हो जाता है जिससे भी यह रोग हो जाता है। इस बीमारी का यदि समय से उपचार नही किया गया तो पशु के दोबारा गर्भ में आने की संभावनाएं नहीं के बराबर रह जाती है।

(12) बांझपन निवारण शिविरों के आयोजन :–

ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे पशु जो बार–बार कृत्रिम वीर्यदान करने पर भी गर्भित नहीं होते है, उनसे बांझपन निवारण हेतु दुग्ध संघ के पशु चिकित्सकों तथा कृत्रिम वीर्यदान अधिकारियों द्वारा संयुक्त रूप से प्रारंभिक दुग्ध समितियों में बांझपन शिविर आयोजित किए जाते है। इन शिविरों के आयोजन की तिथियां पूर्व निर्धारित होती है। अतः इन निर्धारित तिथियों में संबंधित दुग्ध समिति के उत्पादक सदस्य अपने–अपने बांझ पशु जांच एवं उपचार हेतु समिति के दुग्ध संग्रह केन्द्र पर लाते है। इस केन्द्र पर पशु चिकित्सकों द्वारा पशुओं के जनन अगों का परीक्षण कर उनके चिकित्सा की जाती है। प्रदेश के पशुपालन विभाग द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों में बांझपन शिविरों का आयोजन किया जाता है। बांझपन शिविरों के आयोजन के समय सभी पशु चिकित्सकों के पास आवश्यक दवाईयां, शल्य चिकित्सा सामग्री तथा उपकरण उपलब्ध रहते है जिनका स्थल पर भी उपयोग पशुओं के बांझपन के उपचार में किया जाता है। अतः दुग्ध संघ के फील्ड पर्यवेक्षक तथा सहकारी दुग्ध समिति के सचिव के इन बांझपन निवारण शिविरों के आयोजन कराने के समय–समय पर पहल करनी चाहिए।

5. स्वास्थ्य एवं रोगी पशु के लक्षण तथा रोगी पशुओं का प्रबन्ध

उत्पादन के दृष्टि से पशु स्वास्थ्य का बड़ा महत्व है। एक स्वस्थ पशु से ही अच्छे एवं स्वस्थ बच्चे (बछड़ा–बछिया) एवं अधिक दुग्ध उत्पादन की आशा की जा सकती है। केवल स्वस्थ पशु ही प्रत्येक वर्ष ब्यात दे सकता है। प्रतिवर्ष ब्यात से पशु की उत्पादक आयु बढ़ती है। जिससे पशुपालक को अधिक से अधिक संख्या में बच्चे एवं ब्यात मिलते है। इससे उसके सम्पूर्ण जीवन में अधिक मात्रा में दूध मिलता है और पशुपालक के लिए पशु लाभकारी होता है।

(1) पशुओं में बीमारी होने के मुख्य कारण :–

पशु के बीमार होने के कारणों में गलत ढंग से पशु का पालन–पोषण करना, पशु प्रबंध में ध्यान न देना, पशु पोषण की कमी (असंतुलित आहार), वातावरण (मौसम) का बदलना, पैदाइशी रोगों का होना (पैत्रिक रोग), दूषित पानी तथा अस्वच्छ एवं संक्रमित आहार का ग्रहण करना, पेट में कीड़ों (कृमि) का होना, जीवाणुओं, विषाणुओं एवं कीटाणुओं का संक्रमण होना, आकस्मिक दुर्घटना का घटित होना आदि प्रमुख है।

(2) रोगी पशु के प्रति पशुपालक का कर्तव्य :–

बीमार पशु की देखभाल निम्नलिखित तरीके से किया जाना आवश्यक होता है:–

(अ) रोगी पशु की देख–रेख के लिए उसे सबसे पहले स्वस्थ पशुओं से अलग कर स्वच्छ एवं हवादार स्थान पर रखना चाहिए। शुद्वएवं ताजी हवा के लिए खिड़की एवं रोशनदान खुला रखना चाहिए। रोगी पशु को अधिक गर्मी एवं अधिक सर्दी से बचाया जाना चाहिए तथा अधिक ठण्डी एवं तेज हवाएं रोगी को न लगने पाए, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(ब) पशु के पीने के लिए ताजे एवं शुद्वपानी का प्रबंध करना चाहिए।

(स) पशुशाला में पानी की उचित निकास व्यवस्था की जानी चाहिए।

(द) पशु के बिछावन पर्याप्त मोटा, स्वच्छ एवं मुलायम होना चाहिए।

(इ) पशु को बांधने की जगह पर पर्याप्त सफाई का ध्यान दें तथा मक्खी, मच्छर से बचाव हेतु आवश्यक कीटाणुनाशक दवाओं का छिड़काव करते रहना चाहिए।

(ई) रोगी पशु को डराना अथवा मारना नही चाहिए तथा पशु को उसकी इच्छा के विरूद्व जबरन चारा नही खिलाया जाना चाहिए। पशु को हल्का, पौष्टिक एवं पाचक आहार दिया जाना चाहिए। बरसीम, जई, दूब, घास एवं अन्य हरे चारे तथा जौ का दाना जाना ठीक होता है।

(3) स्वस्थ एवं रोगी पशु की पहचान :–

निम्न तालिका में स्वस्थ पशु तथा रोगी पशु के तुलनात्मक लक्षण दिये जा रहे है :–

स्वस्थ एवं रोगी पशु के तुलनात्मक लक्षण

क्र.	स्वस्थ पशु	रोगी (बीमार) पशु
1.	सदैव सजग व सतर्क रहता है।	इतना सतर्क नही होता है, सुस्त रहता है। चमड़ी खुरदरी व बिना चमक की होती है।
2.	चमड़ी चमकीली होती है।	इतना सतर्क नही होता है, सुस्त रहता है।
3.	पीठ को छूने से चमड़ी थरथराती है।	कोई भी चेतना नही होती।
4.	सीधी तरह उठता–बैठता है।	उठने बैठने में कठिनाई होती है।
5.	आंखे चमकीली एवं साफ होती है।	आंख में कीचड़ बहता है।
6.	श्वांस (सांस) सामान्य गति से चलती है।	श्वांस लेने में कठिनाई महसूस होती है।
7.	गोबर व मूत्र का रंग एवं मात्रा सामान्य रहती हैं।	गोबर एवं मूत्र का रंग सामान्य नही रहता।
8.	गोबर नरम और दुर्गन्धरहित रहता है।	गोबर पतला या कड़ा या गाठयुक्त एवं प्रायः दुर्गन्धयुक्त होता है।
9.	नाक पर पानी की बूंदे जमा होती है।	नाक पर पानी की बूंदे नही होती।
10.	चारा सामान्य रूप से खाता है।	चारा कम या बिल्कुल नही खाता।
11.	जुगाली क्रिया चबा–चबाकर करता हैं।	जुगाली कम करता है या बिल्कुल नही करता।
12.	मूत्र सहजता से होता हैं।	मूत्र कठिनता से या रूक–रूककर होता हैं।
13.	पानी सदैव की भांति पीता हैं।	पानी कम अथवा नही पीता है।
14.	खुरों का आकार सामान्य होता है।	खुरों का आकार बड़ा होता है।
15.	गर्भाशय में कोई खामी नहीं होती है।	गर्भाशय में दोष होता है।
16.	शरीर पर छुने से तापमान में कोई कमी नहीं पायी जाती है।	छुने पर शरीर का तापमान ज्यादा गरम या ठंडा महसूस होता है।
17.	थन और स्तन सामान्य होते है।	थन और स्तन असामान्य होते है।
18.	पशु अपने शरीर पर मक्खियां नहीं बैठने देता।	शरीर पर मक्खियां बैठने पर पशु ध्यान नही देता है।
19.	नाड़ी की गति सामान्य होती है।	नाड़ी की गति मन्द या तेज चलती है।

(4) रोगी पशु की देखभाल :–

रोगी पशु की चिकित्सा में उनकी उचित देखभाल व रख–रखाव का विशेष महत्व होता है। बिना उचित रख–रखाव व देखभाल के औषधि भी कारगर नही होती है। पशु के सही प्रकार के रख–रखाव एंव पौष्टिक चारा देने से उनमें रोग रोधक क्षमता का विकास होता है और पशु स्वस्थ रहता है। पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए पशुपालकों को निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :–

(अ) सफाई तथा विश्राम व्यवस्था :– पशु के रहने के स्थान, बिछावन, स्वच्छ हवा एवं गन्दे पानी की निकासी तथा सूर्य के प्रकाश की अच्छी व्यवस्था हो। बीमार पशु को पूरा विश्राम दे तथा उसके शरीर पर खरहरा करें, जिससे गन्दगी निकल सके।

(ब) समुचित आहार (चारा व दाना) :– बीमार पशु को चारा–दाना कम मात्रा में तथा कई किस्तों में दें। पेट खराब होने पर पतला आहार दे। आहार का तापक्रम भी पशु के तापमान से मिलता–जुलता हो। रोगी पशु को बुखार में ज्यादा प्रोटीन युक्त आहार न दे।

(5) रोगी पशुओं का आदर्श आहार :–

(अ) भूसी का दलिया :– गेहूं की भूसी को उबालने के पश्चात ठण्डा करके इसमें उचित मात्रा में नमक व शीरा मिलाकर पशु को दिया जा सकता है।

(ब) अलसी व भूसी का दलिया :– लगभग 1 किलोग्राम अलसी को लगभग 2.5 (ढाई) लीटर पानी में अच्छी तरह उबालकर व ठण्डा करके उसमें थोड़ा सा नमक मिलाकर पशु को देना चाहिए।

(स) जई का आटा :– 1 किलोग्राम जई के आटे को लगभग 1 लिटर पानी में 10 मिनट तक उबालकर धीमी आंच में पकाकर इस दूध अथवा पानी मिलाकर पतला करके उसमें पर्याप्त मात्रा में नमक मिलाकर पशु को दिया जाता है। जई के आटे को पानी में सानकर इसमें उबलता पानी पर्याप्त मात्रा में मिलाकर, जब ठण्डा हो जाय तो उसे भी पशु को खिलाया जा सकता है।

(द) उबले जौ :– 1 किलोग्राम जौ को लगभग 5 लीटर पानी में उबालकर उसमें भूसी मिलाकर पशु को खिलाया जा सकता है।

(इ) जौ का पानी :– जौ को पानी में लगभग 2 घण्टे उबालकर तथा छानकर जौ का पानी तैयार किया जाता है, यह पानी सुपाच्य एवं पौष्टिक होता है। इसके अतिरिक्त रोगी पशु को हरी बरसीम व रिजका का चारा तथा लाही या चावल का मांड आदि भी दिया जा सकता है।

6. पशुओं के संक्रामक रोग तथा उनका टीकाकरण

उपचार से बचाव अच्छा

संक्रामक रोगों में कुछ रोग ऐसे होते है जिनका कोई उपचार नही होता है। ऐसी स्थिति में ''उपचार से बचाव अच्छा'' का रास्ता ही उचित होता हैं। संक्रामक रोगो से पीड़ित पशु की चिकित्सा भी अत्यंत महंगी होती है। उपचार के लिए पशु चिकित्सक भी गांव में आसानी से नही मिल पाते है। इन रोगो से पीड़ित पशु को यदि उपचार करने से भी जीवित बच जाते है तो भी उनके उस ब्यात के दूध की मात्रा में अत्यंत कमी हो जाती है। जिससे पशुपालकों को अधिक आर्थिक हानि होती है। संक्रामक रोगो को रोकथाम के लिए यह आवश्यक है कि पशुओं में रोग रोधक टीके निर्धारित समय के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष लगवाये जायें।

(1) रिन्डरपेस्ट (पशु प्लेग) :–

यह बीमारी पोकनी, पकवेदन, पाकनीमाता, वेदन आदि नामों से गांव में जानी जाती है। यह रोग सभी जुगाली करने वाले पशुओं में होता हैं। इस रोग में तेज बुखार, भूख न लगना, दुग्ध उत्पादन में कमी होना, जीभ के नीचे तथा मसूड़ों पर छालों का पड़ना आदि प्रमुख लक्षण होते है। इस रोग में पशु की आंखे लाल हो जाती है। तथा उनमें गाढ़े–पीले रंग का कीचड़ बहने लगता है। खून से मिले पतले दस्त तथा कभी–कभी नाक तथा योनि द्वार पर छाले भी पड़ जाते है। रिन्डरपेस्ट एक प्रकार का विषाणुजनित (वायरस) रोग है। यदि किसी पशु में इस रोग के लक्षण दिखाई देते है तो तुरन्त पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। इस बीमारी से बचाव के लिए पशुओं का सामयिक टीकाकरण कराना अति आवश्यक होता है।

(2) खुरपका–मुँहपका रोग (फुट एण्ड माउथ डिसीज) :–

यह एक विषाणुओं से फैलने वाला संक्रामक रोग है जो कि सभी जुगाली करने वाले पशुओं में होता है। यह रोग गाय, भैंस, भेंड़, बकरी, सुअर आदि पशुओं को पूरे वर्ष कभी भी हो सकता है। संकर गायों में यह बीमारी ज्यादा फैलती है। इस रोग से पीड़ित पशु के पैर से खुर तक तथा मुंह में छालों का होना, पशु का लंगड़ाना व मुंह से लगातार लार टपकना आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण होते है। यह एक प्राणघातक रोग भी है। रोगी पशु की सामयिक चिकित्सा न कराने से उसकी मृत्यू भी हो सकती है। इस रोग से बचाव के लिए प्रत्येक छः माह के अन्तराल पर पशु का टीकाकरण करवाना चाहिए तथा पशु में रोग फैलने की स्थिति में तुरन्त पशु चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

(3) चेचक या माता :–

यह भी विषाणुओं से फैलने वाला एक संक्रामक रोग है जो आमतौर से गायों तथा उसकी संतान मं होता है। कभी–कभी गायों के साथ–साथ भैंसो में भी यह रोग देखा गया है। इस रोग में पशु की मृत्यू दर तो कम होती है परन्तु पशु की कार्यक्षमता एवं दुग्ध उत्पादन में अत्यधिक कमी आती है। यह रोग भी आमतौर से एक पशु से दूसरे पशु को लगता है। दूध दुहने वाले ग्वालों द्वारा भी यह रोग एक गांव से दूसरे गांव में फैलता है। इस रोग से बचाव हेतु वर्ष में एक बार नवम्बर–दिसम्बर माह में टीका अवश्य लगवाना चाहिए।

(4) गलघोंटू (एच.एस.) :–

यह एक प्रकार का जीवाणुओं से फैलने वाला रोग है। अंग्रेजी भाषा में इस रोग का नाम हीमोरेजिक सेप्टीसीमिया है। इसलिए इसको संक्षिप्त रूप में एच.एस. नाम से जाना जाता है। यह एक घातक छूत का रोग है। इस रोग को घुड़का, घोटुआ, घुरेखा, गलघोटू आदि नामों से भी जाना जाता है। यह बीमारी मुख्यतया गाय एवं भैंसों में होती है। बरसात के समय इस बीमारी का अधिक प्रकोप होता है। इस रोग का जीवाणु मल–मूत्र तथा नाक के स्त्राव द्वारा अन्य पशुओं में फैलता है।

इस रोग का प्रमुख कारण पशु के गले व गर्दन की सूजन होना, शरीर गर्म एवं दर्दयुक्त, सूजन से श्वसन अंगों पर दबाव, तेज बुखार, पेट फूलना, गले में घुटन के कारण श्वांस (सांस) का रूकना, नाक व मुंह से पानी आना आदि होते है। इस रोग में कुछ ही घण्टों में पशु की मौत भी हो जाती है। पशु की प्राण रक्षा के लिए सुनियोजित व तात्कालिक उपचार की आवश्यकता होती है। अतः रोग के लक्षण प्रकट होते ही पशु चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए। इस रोग से बचाव के लिए पशुओं में प्रतिवर्ष टीका लगवाना चाहिए। बरसात प्रारम्भ होने के एक माह पूर्व ही पशुओं को इस बीमारी से बचाव का टीका लगवा देना चाहिए।

(5) गिल्टी रोग (एन्थ्रेक्स) :–

यह एक बहुत ही भयंकर जीवाणुओं से फैलने वाला रोग है। गांवों में इस घातक छूत क रोग को गिल्टी रोग के अतिरिक्त जहरी बुखार, प्लीहा बुखार, बाघी आदि नामों से भी जाना जाता है। अंग्रेजी भाषा में इसे एन्थ्रेक्स कहते है। यह वैसिलस एन्थ्रेक्स नामक जीवाणु से फैलता है। यह बीमारी गाय–भैंस, भेड़, बकरी, घोडा आदि में होती है। स्वस्थ पशुओं में यह रोग रोगी पशु के दाने–चारे, बाल–ऊन, चमड़ा, श्वांस तथा घाव के माध्यम से फैलता है।

इस रोग में पशु के जीवित बचने की संभावना बहुत कम रहती है। यह रोग गाय–भैंस के अलावा बैलो में भी फैलता है। इस रोग के जीवाणु चारे–पानी तथा घाव के रास्ते पशु के शरीर में प्रवेश करते है और शीघ्र ही खून (रक्त) के अन्दर फैलता रक्त को दूषित कर देते है। उक्त के नष्ट होने पर पशु मर जाता है। रोग के जीवाणु पशु के पेशाब, गोबर तथा रक्तस्त्राव के साथ शरीर से बाहर निकलकर खाने वाले चारे को दूषित कर देते है जिससे अन्य स्वस्थ पशुओं में भी यह रोग लग जाता है। अतः इन रोगी पशुओं को गांव के बाहर खेत में रखना चाहिए। रोग का गंभीर रूप आने पर पशु के मुंह, नाक, कान, गुदा तथा योनि से खून बहना प्रारंभ हो जाता है। रोगी पशु कराहता है व पैर पटकता है। बीमारी की इस स्थिति में आने पर पशु मर सकता है। यह ध्यान रहे कि रोगी पशु को बीमार होने पर कभी भी टीका नहीं लगवाना चाहिए।

(6) लंगड़िया रोग (ब्लैक क्वार्टर) :–

इस बीमारी को अलग–अलग क्षेत्रों में लंगड़ी, सुजका, जहरवाद आदि नामों से भी जाना जाता है। यह गाय एवं भैंस की छूत की बीमारी है। यह बीमारी बरसात में अधिकतर फैलती है। स्वस्थ पशु में यह बीमारी रोगी पशु के चारे–दाने या पशु के घाव द्वारा फैलती है।

पशु में अचानक तेज बुखार आना, पैरो में लंगड़ाहट तथा उसमें सूजन आना, भूख न लगना, कब्ज होना, खाल के नीचे कहीं–कहीं चर–चर की आवाज होना तथा दूध का फट जाना आदि इस बीमारी के प्रमुख लक्षण है। इस रोग से बचाव के लिए वैक्सीन के टीके प्रतिवर्ष लगवाना चाहिए। बछड़े तथा बछियों को छः माह की आयु में वर्षा ऋतु से पूर्व ही टीका लगवा देना चाहिए। यह टीका 3 वर्ष की आयु तक ही लगाया जाता है। रोग के लक्षण प्रकट होते ही पशु चिकित्सक की सहायता ली जानी चाहिए।

बघर्रा/गलघोंटू

डेन्टल पैड पर छाले

7. संक्रामक बीमारी से बचाव के उपाय

1. पशुओं को स्वच्छ कोठों में रखें, उनके खानपान में भी स्वच्छता का ध्यान रखें, कमजोर पशु शीघ्र रोग–ग्रस्त होता है।
2. बाजार या मेलों से क्रय किये पशुओं को गांव या शहर से कम से कम ए सप्ताह तक दूरस्थ एकांत वास मं रखें क्यों क अक्सर देखा गया है कि गांव अथवा शहर में नये पशु के प्रवेश के पश्चात् संक्रामक रोग फैला है।
3. रोगी पशु को अलग से रखें तथा उसे चरने न छोड़े। यदि रोगी पशु की मृत्यु हो जाती है तो गढ्डे में पांच स दस किलो चूना डालकर गाड़ दें।
4. पशुओं को किलनी तथा अन्य परजीवी कीड़ों से बचना चाहिए, किलनी को मारने के लिए 3 प्रतिशत डी.डी.टी.या 5 प्रतिशत बी.एच.सी.का पावडर लगाना चाहिए। यह कार्य किसी प्रशिक्षित व्यक्ति के मार्गदर्शन में करना चाहिए।
5. संक्रामक रोगों की सूचना तत्काल निकटतस्थ पशु चिकित्सालय/पुलिस थाना अथवा जिला मुख्यालय के प्रशासनिक प्रभाग को दें।
6. विषाणु जन्य या शाकाणु जन्य रोगों से बचने के लिए टीकाकरण समयचक्र अनुसार प्रतिबंधात्मक टीके पशुओं को लगाना चाहिए।

"बीमारी के आगमन से पूर्व के सुरक्षात्मक प्रबन्ध, चिकित्सा से सस्ता एवं सर्वोत्तम है "

पशु टीकाकरण कार्यक्रम :–

रोगी पशु को वैक्सीन का टीका कभी नहीं लगवाना चाहिए। स्वस्थ पशुओं में भी टीकाकरण रोग फैलने के 15 दिन पहले लगवाना चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि एन्टीसीरम रोगी पशुओं को ही लगवाना चाहिए या रोग के सन्देह होने की स्थिति वाले पशुओं में ही लगवायें। गोवंशीय तथा महिषवंशीय पशुओं में प्रमुख संक्रामक रोगो से बचाव हेतु टीकाकरण का कार्यक्रम पिछे तालिका में दर्शाया गया है।

8. पशुओं की प्राथमिक चिकित्सा

प्राथमिक पशु चिकित्सा का उद्देश्य दुर्घटनाग्रस्त पशु की कुशलतापूर्वक सहायता करना है जिससे उसका दर्द कम हो और पशु चिकित्सक के आने तक उसकी दशा और खराब न हो। कभी–कभी पशु अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं जिससे अत्यधिक खून निकला, जख्म होना, हड्डी का टूटना एवं फफोले आदि का पड़ जाना आम बात होती है। इनकी प्राथमिक चिकित्सा करने पर पशु को तात्कालिक राहत मिलती है तथा पशु चिकित्सक के आने तक उनकी दशा अधिक खराब नहीं होती है।

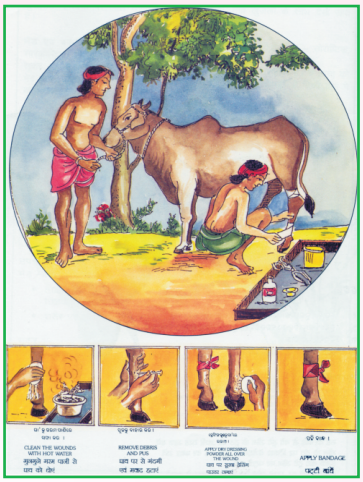

पशुओं का प्राथमिक उपचार

(1) प्राथमिक पशु चिकित्सा के लिए आवश्यक वस्तुएं –

1. स्वच्छ रूई, पट्टियां, सर्जिकल गाज, पुरानी सूती धोती या चादर।
2. रबर की नलियां या मजबूत पतली रस्सी।
3. सर्जिकल कैंचियां (सभी आकार की)
4. चिमटी
5. थर्मामीटर (दो अदद)
6. टैनिक अम्ल (जो विष तथा जलने के लिए प्रयोग किया जाता है।)
7. गुड़ या राब।
8. जई चूर्ण।
9. मोटी रस्सियां (कष्ट प्रसव के लिए)
10. ट्रोकार (शूची–श्लाका) एवं कैन्यूला (प्रवेशिनी)।
11. चाकू (2 अदद)
12. दवायें।

(2) प्राथमिक पशु चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली साधारण दवाइयां –

1. अरंडी का तेल	2. मैग्नीशियम सल्फेट	3. फिलायल
4. कार्बोलिक एसिड	5. पोटेशियम परमैंगनेट	6. लाइसोल
7. कपूर	8. अल्कोहल (शराब)	9. नीलाथोथा (तूतिया)
10. फिटकरी	11. टिंचर आयोडिन	12. तारपीन का तेल
13. सरसों का तेल	14. कत्था व खड़िया	15. कलमी शोरा

(3) प्राथमिक उपचार विधि –

(i) घाव या जख्म –

कारण :– किसी धारधार हथियार के लगने या दुर्घटना होने से शरीर की खाल, खून की नली या कोशिकाओं का कट या फट जाना।

लक्षण :– (1) खाल कटना (2) मांस पेशियों का कटना तथा (3) खून बहना।

प्राथमिक उपचार :– सर्वप्रथम प्रभावित अंग में पट्टी बांधकर खून को बन्द करना चाहिए। घाव को साफ कर टिन्चर बेन्जाइन का फाहा रखकर पट्टी कर देना चाहिए। यदि खून नहीं निकल रहा है तो घाव को पोटाश के पानी से साफ कर ''जिंक मलहम'' या ''लोरेक्जीन'' क्रीम या ''सेल्फानिलेमाइट चूर्ण (पाउडर) लगाकर पट्टी बांधना चाहिए।

(ii) खरोंच लगना –

प्राथमिक उपचार :– खरोंच लगे स्थान को पोटाश के पानी से साफ कर ''टिंचर आयोडीन'' लगा देना चाहिए। इसमें पट्टी नहीं करना चाहिए।

(iii) पुराना घाव –

लक्षण :– (1) घाव पर पपड़ी पड़ना (2) घाव से दुर्गन्ध आना (3) घाव में मवाद पड़ना अथवा कीड़े पड़ जाना।

प्राथमिक उपचार :– घाव को पोटाश के पानी से अच्छी तरह साफ करना चाहिए। सफाई के बाद जिंक, नीम, लोरेक्जीन मलहम या एक्रीफ्लेबीन अथवा टिंचर आयोडिन लगाकर पट्टी बांधना चाहिए। जख्म में यदि सूजन है तो आयोडीन मलहम लगाना चाहिए।

(iv) हड्डी का चोट, मोच आना, हड्डी उतरना या हड्डी टूटना –

कारण :– ऊँची–नीचे जगह पर पैर पड़ने से तथा चोट लगने से।

लक्षण :– चोट लगे स्थान या मोच के स्थान पर अधिक दर्द होना तथा सूजन आना।

प्राथमिक उपचार :– यदि मोच है तो तत्काल ठण्डे पानी या बर्फ से सिकाई करना चाहिए। सिकाई के बाद काला मलहम (आयोडिन या आयोडेक्स) लगाकर सिकाई करना चाहिए। हड्डी टूटने की स्थिति तत्काल पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए।

(v) सींग टूटना –

कारण :– पशुओं के आपस में लड़ने से या पेड़ व झाड़ी में उलझने से।

प्राथमिक उपचार :– यदि टूटे सींग से खून बह रहा हो तो स्प्रिट, एल्कोहल अथवा मरक्यूरोक्रीम (लाल दवा या एस.सी. लोशन) में साफ रूई भिगोकर पहले उस भाग की सफाई कर दें। तत्पश्चात् उस पर टिंचर बेंजोइन अथवा टिंचर फेरिपरक्लोराइड से भीगी रूई चिपका दें, खून का बहना बन्द हो जायेगा।

(vi) ऑख आना –

लक्षण :– ऑख से पानी निकलना, कीचड़ आना या ऑख लाल होना।

प्राथमिक उपचार :– बोरिक एसिड मिले पुराने गुनगुने पानी से ऑखों की सफाई करना चाहिए। मरक्योरोक्रीम या एक्रीफ्लेबीन घोल (लोशन) या अन्य ऑख की दवा पशु चिकित्सक से परामर्श लेकर डालिनी चाहिए।

(vii) जलना या फफोले पड़ना –

प्राथमिक उपचार :– सबसे पहले जले हुए स्थान साफ व ठण्डा पानी डालना चाहिए इससे जलन कम होगी। पशु को छाया में ठण्डे स्थान पर बांधे और घाव पर मक्खियां न बैठने दें। जले स्थान पर चूने के पानी में खाने वाला तेल मिलाकर लगाना चाहिए। यदि जलने से घाव बन गया है तो बरनाल या सल्फानिलेमाइड चूर्ण (पाउडर) लगाना चाहिए।

(viii) दाद या खुजली –

लक्षण :– खुजली होना, बाल गिरना, खाल मोटी हो जाना, दाद या खुजली के स्थान पर खाल का रंग लाल हो जाना तथा गोल–गोल दाग दिखाई देना।

प्राथमिक उपचार :– सफाई करना तथा गन्धक का मलहम लगाना या टिंचर आयोडीन लगाना।

(ix) अफरा या पेट फूलना –

कारण :– गाय अथवा भैंस द्वारा अधिक मात्रा में बरसीम, लोबिया, लूसर्न, अनाज खाने से तथा बासी खाना खा लेने के कारण।

लक्षण :– गैस बनना तथा पेट फूलना।

प्राथमिक उपचार :– पशु को पानी बिल्कुल नहीं पिलाना चाहिए तथा उसको बैठने नहीं देना चाहिए। पेट के बाई तरफ की कोख के ऊपर की ओर जहां गैस भरी हो, तेज धार वाले चाकू से छेद कर देना चाहिए। कोख में छेद करने से पूर्व चाकू को खूब गर्म करके ठण्डा कर लेना चाहिए, जिससे इसके उपयोग से घाव में कोई जीवाणु संक्रमण न हो सके। काला नमक 100 ग्राम, हींग 30 ग्राम, तारपीन का तेल 100 मि.ली. व अलसी का तेल 500 मि.ली. में घोल बनाकर पशु को पिलाना चाहिए।

(x) गले में कुछ अटकना –

पशु कई बार बड़े आकार के फल आदि निगलने का प्रयास करते हैं जो कि उनके गले में फस जाता है।

लक्षण :– मुंह में लार गिरना, बेचैन रहना तथा पेट फूल जाना।

उपचार :– गले में हाथ डालकर फल को तोड़ देना चाहिए। यदि वस्तु टूटने फूटने वाली न हो तो तत्काल पशु चिकित्सक की राय लेनी चाहिए।

(xi) थन कटना, चटकना या उस पर फुन्सी निकलना –

कारण :– बछड़े के दांत लगने, थन पर पैर पड़ जाने से, मक्खी द्वारा काटने से बैठने पर किसी नुकीली वस्तु के चुभने से।

लक्षण :– ठंड के मौसम में दूध निकालने में थन की खाल चटक जाती है या कट जाती है अथवा उस पर फुन्सी निकल आती है।

प्राथमिक उपचार :– थन तथा अयन को पोटाश के पानी से सफाई कर उसे सुखा लेना चाहिए। उसके बाद जिंकबोरिक मरहम दूध निकालने के बाद सुबह–शाम लगायें तथा थन को साफ रखें एवं गन्दगी से बचाएं। साधारण जख्म होने की स्थिति में गर्म पानी को ठण्डा करके थन को धोना चाहिए तथा पानी सूखने के बाद थन पर जीवाणुनाशक (एन्टीसेप्टिक) क्रीम का लेप करना चाहिए। जिंक आक्साइड 1/2 भाग (5 ग्राम), बोरिक ऐसिड 1 भाग

(10 ग्राम), सफेद या पीली वैसलीन 6 भाग (60 ग्राम) लेकर तीनों को भलीभांति मिलाकर एकरूप करके ढक्कनदार चौड़े मुंह वाली शीशी में भरकर रखें जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग किया जा सके।

(xii) मुंह में छाले पड़ना –

लक्षण :– मुंह से लार निकलना, बार–बार जीभ बाहर निकालना, मसूढ़े लाल होना तथा छाले पड़ना।

प्राथमिक उपचार :– पोटाश के ठण्डे पानी से मुंह की सफाई करना या फिटकरी लगाना चाहिए तथा ग्लिसरीन में बोरिक एसिड मिलाकर छालों में लगाना चाहिए।

(xiii) पागल कुत्ते का काटना –

प्राथमिक उपचार :– घाव को साफ पानी तथा साबुन से अच्छी तरह धोकर शराब का फाहा रखें। तत्पश्चात् कार्बोलिक एसिड की फुरहरी बनाकर काटे हुए स्थान पर रखें। नित्य खुले घाव पर उसकी मरहम पट्टी भी करें। साथ ही एन्टीरैबिक इन्जेक्शन भी पशु को लगवायें।

(xiv) सांप का काटना –

प्राथमिक उपचार :– जहां पर सांप ने काटा हो, तत्काल उसके ऊपर तथा नीचे कस कर बांध कर सांप काटे स्थान पर + निशान बनाकर तेज चाकू या ब्लेड से चीरा लगाकर वहां का थोड़ा खून निकाल देना चाहिए और घाव में पोटाश का पाउडर भर देना चाहिए। ऐंटीस्नेकवेनम सीरम का त्वचा के नीचे टीका देकर पशु को बचाया जा सकता है। पशु को ढोल या पीपा बजाकर जगाकर रखें और उसे विष के प्रभाव में सोने न दें।

(xv) बिच्छू का काटना –

प्राथमिक उपचार :– जिस स्थान पर बिच्छू का डंक लगा हो, वहां पर साफ चाकू या ब्लेड से छोटा सा चीरा लगाकर उसमें पोटाश का पाउडर भर दें। पशु को पानी खूब पिलाएं।

(xvi) धोखे से विष खा लेने पर –

प्राथमिक उपचार :– रोगी पशु को निम्नलिखित विधि से तत्काल उलटी करायें। गुनगुने पानी में पिसी सरसों मिलाकर पिलाएं। गुनगुने पानी में थोड़ा सा जिंक सल्फेट मिलाकर पिलाने से भी उल्टी हो जाती है। गुनगुने पानी में नमक मिलाकर पिलाएं, इससे भी उल्टी हो जाती है। मुंह के अन्दर अंगुली या पंख डालने से भी उल्टी हो जाती है। उल्टी कराने के बाद रोगी पशु को तीसी की चाय, जौ का पानी, दूध ठण्डे पानी में 4 से 5 अण्डों की सफेदी फेंट कर पिलाए जिससे विष का शोषित होना रूक जायेगा और आमाशय तथा अतड़ी की दीवारों में जलन तथा कटाव नही होगा।

एट्रोपीन सल्फेट का इन्जेक्शन देकर पशु को ग्लूकोज चढ़वायें तथा विटामिन बी–काम्प्लेक्स का टीका लगवायें। आवश्यकता पड़ने पर ऐंटिबायोटिक, कार्टिजोन औषधियां भी दी जा सकती है। ऐसी स्थिति में पशु को पानी खूब पिलाना चाहिए।

(xvii) जू पड़ना या किलनी पड़ना –

प्राथमिक उपचार :– पोटाश के पानी से जानवर को नहलाना चाहिए। तम्बाकू की पत्तियों को पानी में उबाल कर नहलाना चाहिए। जहां जूं पड़ गये हो, वहां के बालों को काटकर जला देना चाहिए। डी.डी.टी. या गेमेक्सीन को खड़िया या राख में मिलाकर प्रभावित स्थान में लगाना चाहिए परन्तु ध्यान रहे कि पशु इसको चाटने न पाये।

(xviii) अपच होना –

कारण :– अधिक मात्रा में दाना या हरी घास खा लेने से अथवा कीटाणुओं द्वारा पशु के पेट में प्रवेश करने से।

लक्षण :– पशु को बार–बार दस्त आना।

प्राथमिक उपचार :– अधिक से अधिक पानी पिलाना चाहिए। गुड़, नमक, जौ का पका हुआ आटा, पानी में घोलकर पिलाना चाहिए। खड़िया 100 ग्राम तथा कत्था 200 ग्राम मिलाकर पशु को पिलाना चाहिए।

(4) पशुओं को दवा देने की विधियां –

पशुओं को निम्नलिखित विधियों से दवाएं दी जा सकती है :–

(i) मुंह के द्वारा दवा पिलाना :– अधिकांश औषधियां पानी अथवा तेल में मिलाकर पशु के मुख द्वारा पिलाई जाती है।

(ii) दवा चटाना (चटनी के रूप में) :– कई दवाईयां ऐसी होती है, जिनको कि पशु को पिलाने के बजाए चटाना अधिक आसान होता है।

(iii) खुराक के साथ दवाई देना :– संतुलित पशु आहार अथवा खली–चोकर के साथ मिलाकर भी पशुओं को दवाईयां खिलायी जाती है।

(iv) सुई (इंजेक्शन द्वारा) :– पशुओं के रोग की गंभीर स्थिति के कारण जब उन्हें एन्टीबायोटिक देने होते है तो उन्हें सुई (इन्जेक्शन) द्वारा दिये जाते हैं।

(v) पैर धोना (फुटबाथ) :– सामान्यतया जब पशु में खुर संबंधी बीमारियां होती है तो उन्हें दवाईयों के घोल में खड़ा किया जाता है।

(vi) मालिश द्वारा :– पशुओं के मोच आने की स्थिति में काले मलहम या बेलाडोना लिनिमेंट या तारपीन लिनिमेंट की मालिश करने से पशु को लाभ होता है।

(vii) सिंकाई करना :– पशुओं को चोट लगने से जब उनके मुख में सूजन आ जाती है तो उस पर सेंक करना उपयोगी होता है।

(viii) पुल्टिस बांधना :– पशुओं को फोड़ा होने की स्थिति में इसको पकाने के लिए प्रायः अलसी के दानों को बारीक पीसकर उसमें पानी मिलाकर तथा आग पर थोड़ा गर्म करके उसकी पुल्टिस को एक कपड़े की तह में रखकर प्रभावित अंग में बांध दिया जाता है जिससे घाव शीघ्र पक जाता है।

(ix) एनिमा लगाना :– पशु द्वारा गोबर न करने अथवा कब्ज होने की स्थिति में उसे एनिमा दिया जाता है जिससे उसका मल बाहर आ जाता है।

(x) ऑख–कान में दवा डालना :– पशुओं के ऑख तथा कान के रोगों में द्रव अथवा मलहम लगाया जाता है। दवा लगाने अथवा डालने से पहले ऑख तथा कान को अच्छी तरह से रूई के फाहे से साफ कर लेना चाहिए।

निष्कर्ष :–

ग्रामीण क्षेत्रों के रहन–सहन में पशुओं में दुर्घटनाएं होना एक स्वाभाविक एवं आम बात है। इन दुर्घटनाओं का यदि समय से प्राथमिक उपचार किसी अनुभवी एवं प्रशिक्षित व्यक्ति या पशु चिकित्सक द्वारा कराया जाता है तो इन छोटी मोटी बीमारियों की रोकथाम व उपचार आसानी से सुनिश्चित हो सकता है। समय से उपचार न मिलने पर छोटी–मोटी बीमारियां या दुर्घटनाएं भयानक रूप धारण कर लेती है और उनसे पशु की मृत्यू भी हो सकती है। अतः प्राथमिक उपचार की जानकारी पशुपालकों को अवश्य होनी चाहिए। यदि सचिव प्रशिक्षण के माध्यम से यदि पशुओं का प्राथमिक उपचार सीख लेता है तो प्राथमिक पशु चिकित्सा की दवाईयां दुग्ध संघ से प्राप्त कर इस महत्वपूर्ण कार्य में अपना सहयोग प्रदान कर सकता है और इस अतिरिक्त कार्य के लिए उसको समिति गांव से अतिरिक्त आमदनी भी हो सकती है।

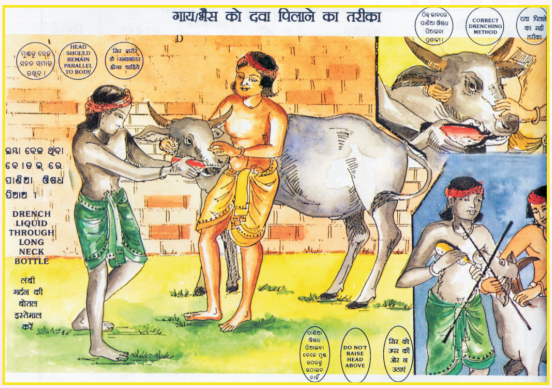

9. दुग्ध उत्पादन के लिये जरूरी बातें

दुहने के बाद हर थन को साफ पानी से धोना चाहिए और जीवाणुनाशक घोल डुबाना चाहिये

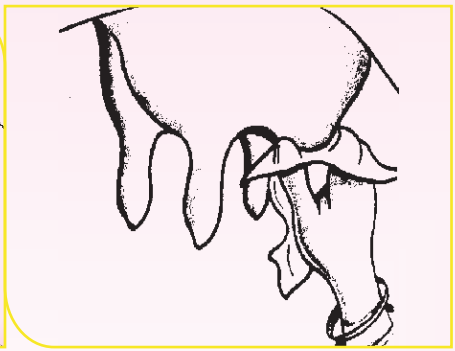

गाय और भैंस के थन को साफ पानी से धोकर साफ धुले हुए कपड़े से सुखाना चाहिए

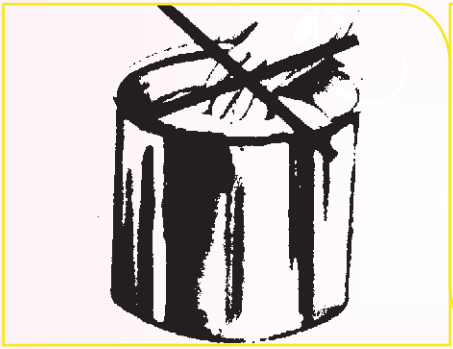

उंगलियों को दूध में डुबाना नहीं चाहिए

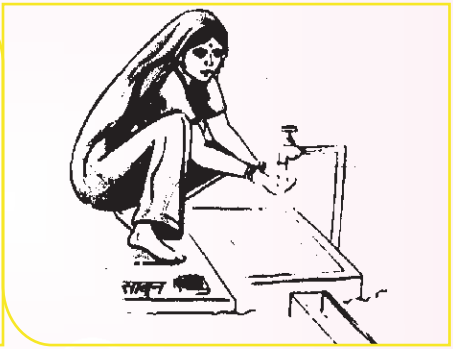

दूध दुहने से पहले हाथों को साबून से धो लेना चाहिए

दूध दुहने के पहले हर थन से एक–दो धार दूध निकाल कर फेंक देना चाहिए

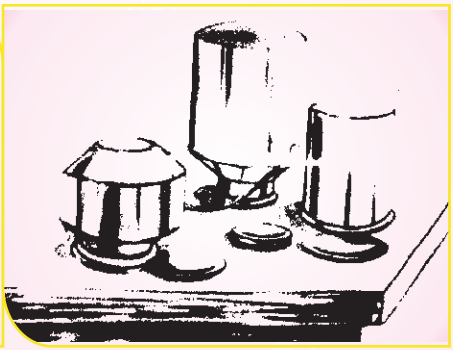

दूध के बर्तनों को सुखाने के लिए उन्हें धोकर उल्टे रखने चाहिए

10. दूध दुहने का सही तरीका एवं ध्यान देने योग्य बातें

दूध दुहते समय गाय को बक्खियों, तेज आवाज, हार्न आदि से बचाएं, आरामदायक स्थिति में गाय अधिक दूध देती है

थन को अच्छी तरह से एंटीसेप्टिक लोशन या नीम–पत्ती उबले पानी से धो लें

दूध दुहते समय ना थूंके, नाक ना साफ करें, बात भी ना करें

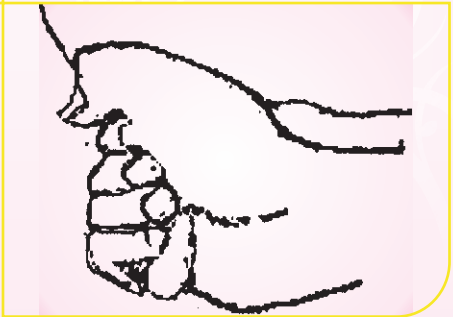

दूध दुहने का सही तरीका

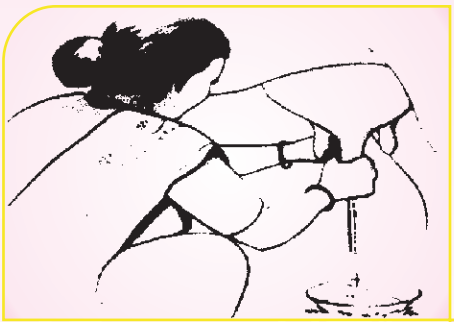

दूध की पहली कुछ धारों को नीचे गिरा देना चाहिए, ऐसा करने से थन में जमा गंदगी आदि साफ हो जाता है

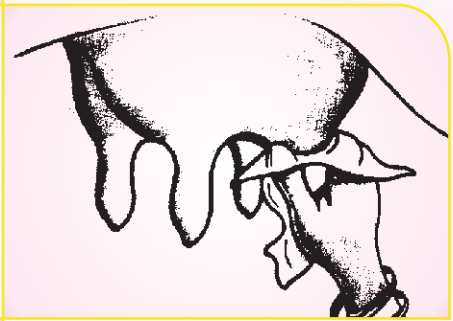

साफ कपड़े से पोछें

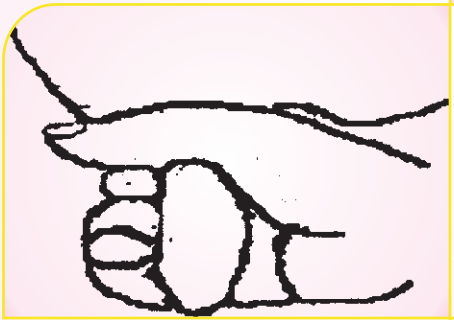

दूध दुहने का सही तरीका

दूध दुहने का सही तरीका

पशुओं में प्रतिबंधात्मक टीकाकरण तालिका

क्र.	पशु प्रजापति/ रोग का नाम	टीका का नाम	टीका लगाने के प्रारंभिक आयु	टीका पथरी भाग का तरीका	प्रतिरोधक क्षमता	बुस्टर या पुनः टीकाकरण	विशेष
	(क) गौ–भैंस वंशीय	1. एलम प्रेसीपिटेटेड					
1.	गलघोंटू		6 माह की उम्र चमड़ी की नीचे	5 एम.एल	6 माह	प्रतिवर्ष	मानसून के पूर्व/जून से सितम्बर जुलाई, अग., सित.
		2. आयल एड्जूबेंट	6 माह की उम्र	2–3 एम.एल. मांस में	1 वर्ष	प्रतिवर्ष	मानसून के पूर्व/ जून से सितम्बर जुलाई, अग., सित.(विशेष संकर पशुओं
2.	एक टंगिया	एलम (प्रेसीपिटेटेड)	6 माह की उम्र	5 एम.एल. चमड़ी के नीचे	6 माह	प्रतिवर्ष	मनसून के पूर्व/अप्रैल से जून
3.	छड़ रोग	एन्थ्रेक्स स्पोर (प्रेसीपिटेटेड)	6 माह की उम्र	1 एम.एल. चमड़ी के नीचे	1 माह	प्रतिवर्ष	मानसून के पूर्व/मई,जून
4.	खुरहा चपका	1. ट्रेटा वैल्नट वैक्सीन	3 माह	5 एम.एल. चमड़ी के नीचे	6 माह	3 माह बाद	प्रति 6 माह में/मई, जून
		2. आयल एड्जूबेंट	3 माह	2 एम.एल.मांस	1 माह	प्रतिवर्ष	अक्टूबर, नवम्बर